शिक्षक-प्रशिक्षण कुंजी है

इन्दु प्रसाद

लर्निंग कर्व के साथ एक उन्मुक्त बातचीत में इन्दु प्रसाद बताती हैं कि समावेशी शिक्षा के क्षेत्र में हमने कितना रास्ता तय किया है और भविष्य में विकलांग बच्चों के लिए बेहतर तथा अधिक समावेशी शिक्षा के लिए कौन-से कारक महत्त्वपूर्ण होंगे।

यदि आप विकलांग बच्चों या युवाओं को शिक्षित करने के पूरे इतिहास को देखें तो आप पाएँगे कि इन बच्चों को बच्चा समझने के लिए भी हम कितनी जद्दोजहद से गुज़रे थे। यहाँ तक कि हम उनके लिए 'वह मोटा लड़का' या 'वह मन्दबुद्धि लड़की' या 'वह स्वलीन लड़का' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। अपने प्रशिक्षण से मैंने जो महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं, उनमें से एक यह थी कि विकलांग बच्चा पहले एक बच्चा है और फिर वह जैसा भी है, वैसा है— तो जैसे मैं एक लम्बी नाक वाली लड़की हूँ, वैसे ही वह स्वलीनता या प्रमस्तिष्क पक्षाघात (सेरब्रल पॉल्ज़ी) वाली लड़की है । इस बात को पहचानने में हमें बहुत समय लग गया कि ये बच्चे सबसे पहले तो बच्चे हैं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जब हमने इसे पहचाना, तब भी विकलांगता के बारे में हमारा दृष्टिकोण चिकित्सीय या मेडिकल ज़्यादा था— और यहाँ मैं उस बात की अनदेखी कर रही हूँ जहाँ आप विकलांगता वाले बच्चे को छिपाते हैं। ऐसा अभी भी होता है लेकिन अब यह एक आम बात नहीं है। हालाँकि ऐसे कई परिवार हैं जिनके बच्चे गम्भीर रूप से विकलांग हैं पर वे इसके बारे में बात नहीं करना चाहते, वे बच्चे को कुछ करने नहीं देते। हमें ऐसे परिवारों की मदद करनी है लेकिन मैं समझती हूँ कि ऐसे लोग अधिक नहीं हैं।

पन्द्रह साल पहले जब मैं विकलांग बच्चों की शिक्षिका थी, तब ऐसे बच्चे भी थे जो दस साल की उम्र में पहली बार मेरे पास आए थे। ऐसा नहीं है कि वे दस साल से कुछ और कर रहे थे और फिर वे मेरे पास आए। नहीं। वे घर से बाहर ही तब निकले जब माता-पिता को आख़िरकार यह एहसास हुआ कि स्थिति बदल गई है। इसलिए यह स्थिति अकल्पनीय या असत्य नहीं है कि ऐसे परिवार हैं जो संघर्ष करते हैं लेकिन इसके पीछे बच्चे को हानि पहुँचाने की भावना नहीं होती है। कई बार ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे बच्चे को बाक़ी दुनिया से बचाकर रखना चाहते हैं, क्योंकि वे बच्चे की सुरक्षा करना चाहते हैं या फिर संसाधनों की कमी है या सरासर व्यावहारिकता है— उनके पास खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं है, दूसरे बच्चों के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। कई बार यह डर भी होता है कि लोग क्या कहेंगे, लोग क्या सोचेंगे, मैं इस बच्चे को बाहर कैसे ले जाऊँ— सामाजिक दबाव, पारिवारिक दबाव का मिला-जुला प्रभाव। लेकिन जैसा मैंने कहा, अब ऐसे परिवार अधिक नहीं हैं।

हम विकलांगता के 'चिकित्साकरण' के दौर से भी गुज़रे। दुनिया भर में विकलांगता को एक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्दे के रूप में देखा गया। चिकित्सीय समाधान हैं, लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें चिकित्सीय रूप से हल नहीं किया जा सकता। इसलिए यह पता लगाना ज़रूरी है कि उनका प्रबन्धन कैसे किया जाए। यह किसी मरीज़ का इलाज करने जैसा है। एक 'तकनीकी' प्रकार के डर के कारण लोग इन बच्चों को उन बच्चों के रूप में नहीं देखते थे जो बड़े होते हैं, जिन्हें सामाजिक जीवन और भावनात्मक समर्थन की आवश्यकता होती है, जो मूर्खतापूर्ण, अच्छे, बुरे, प्यारे और परेशान करने वाले काम करेंगे— ठीक वैसे ही जैसे कोई अन्य बच्चा करता है। उन्हें कुछ अतिरिक्त चीज़ों की, कुछ अलग चीज़ों की आवश्यकता होगी लेकिन किसी भी अन्य बच्चे की तरह उन्हें भी शिक्षित करने और शिक्षा के अवसर देने की आवश्यकता है। इस मुक़ाम तक पहुँचने में हमें लम्बा समय लगा कि जब हम किसी बच्चे और इन मुद्दों को देखकर यह सोचें कि इस बच्चे में कुछ क्षमताएँ हैं और इसे कुछ दिक़्क़तें हैं, तो इस बच्चे के लिए कुछ ऐसा किया जाए जो इसके लिए अच्छा हो और इसके काम आए।

कई बार परिस्थितियाँ कठिनाइयों को बढ़ा देती हैं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए आपकी आँखों में कोई तक़लीफ़ है और आप कक्षा में सबसे पीछे बैठे हैं। पुस्तक में अक्षरों का आकार बहुत छोटा है और कोई भी आपको चश्मा दिलाने का कोई प्रयास नहीं करता है, तो इस तरह एक छोटी-सी समस्या एक बड़ी अक्षमता में बदल सकती है। जैसे ही आपको चश्मा मिल जाता है, सब कुछ बदल जाता है। इस तरह की कुछ परिस्थितियाँ हैं, कुछ वातावरण हैं जिन्हें आप बना सकते हैं, भले ही इनसे अक्षमता दूर न हो लेकिन उसका प्रबन्धन बेहतर तरीक़े से किया जा सकेगा।

इन बच्चों की मदद करने के तरीक़ों को समझने के लिए बहुत

अधिक महारत की आवश्यकता होती है। वैसे तो किसी कक्षा में तीस नियमित बच्चों का प्रबन्धन करने के लिए ही अत्यधिक सहायता की आवश्यकता होती है, लेकिन जब विभिन्न प्रकार की विकलांगता वाले बच्चों की बात हो तो कक्षा में पाँच से सात बच्चों से अधिक नहीं लिए जा सकते। इस बात ने हमें यह सोचने के लिए प्रेरित किया कि चूँकि इसके लिए बहुत महारत और शिक्षण-अधिगम के लिए एकदम अलग प्रकार के दृष्टिकोण की आवश्यकता है, तो क्यों ना उनके लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना की जाए। प्रारम्भ में ये संस्थान ऐसे थे जहाँ आप बच्चे को छोड़ देते थे और संस्था उनकी देखभाल करती थी। तो इस मामले को लेकर बहुत चिन्ताशील लोगों में से अधिकांश ने शुरू में विदेश जाकर प्रशिक्षण प्राप्त किया क्योंकि उस तरह का प्रशिक्षण देश में उपलब्ध नहीं था। कई लोगों के परिवार में कोई विकलांग व्यक्ति था तथा वे इस बारे में कुछ करना चाहते थे, तो उन्होंने ये संस्थान शुरू किए। यह 'विशेष स्थान' वाला चरण था— यानी केवल विकलांग बच्चों के लिए एक केन्द्र। यह स्थान एक उत्कृष्ट स्थान था, जिसमें ऐसे प्रतिबद्ध लोग थे जो बच्चों की देखभाल बहुत अच्छी तरह से करते थे। अतः बच्चों का विकास भली भाँति होता था। कई बच्चों को इस तरह की तवज्जो और देखभाल से बहुत लाभ मिला है— अन्यथा शायद वे बच्चे कहीं खो गए होते, लेकिन इन संस्थानों के कारण उन्होंने सभी प्रकार की दिलचस्प चीज़ें सीखीं और कीं। यहाँ बच्चों को एक अच्छा व संरक्षित वातावरण मिलने लगा जहाँ हर चीज़ का पूरा ध्यान रखा जाता है। मैं उन संस्थानों की बात कर रही हूँ जो अच्छी तरह काम करते हैं और हमारे देश में इसके पर्याप्त उदाहरण हैं।

इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि इस तरह की सुविधा, इस तरह के लोग और वातावरण केवल बड़े शहरों में उपलब्ध हैं और इसलिए देश का बड़ा हिस्सा इससे वंचित रह जाता है। कई संस्थानों ने अपनी बात का प्रसार करने के लिए, विभिन्न हिस्सों में मदद के लिए विस्तार केन्द्र भी खोले लेकिन उनका मुख्य काम 'विशेष शिक्षा' था— विकलांग बच्चों के लिए एक ऐसी जगह जो संरक्षित, सुरक्षित, ध्यान रखने वाली और प्रतिबद्ध हो —एक पेशेवर स्थान जहाँ वे सभी सहूलियतों व सेवाओं का उपयोग कर सकते हों। यह कुछ समय के लिए एक मॉडल रहा है। मैंने इस तरह की जगहों पर काम किया है और मैं इनकी सकारात्मक बातों को जानती हूँ। दुनिया में जहाँ इन बच्चों का बिलकुल स्वागत नहीं होता अर्थात इन्हें स्वीकार नहीं किया जाता, वहाँ यह उसकी भरपाई का एक प्रयास है। यह उनके लिए एक अच्छा और छोटा वैकल्पिक संसार बनाने जैसा है। लेकिन यह एक अवास्तविक दुनिया है, वह नहीं जिसे उन्हें भविष्य में सँभालना है। जब वे बड़े होते हैं तो इस देश के नागरिक के रूप में, समाज और समुदाय के सदस्यों के रूप में, उन्हें हर चीज़ में भाग लेना होता है। इस भागीदारी के साथ समझौता हो जाता है। दूसरी बात, दुनिया के बाक़ी लोग, उनके साथी, यह जानते ही नहीं कि उनका अस्तित्व है। अधिकतर लोग यही सोचकर बड़े होते हैं कि दुनिया में हर कोई उनके जैसा ही है। तो हर तरफ से नुक़सान ही होता है।

इस समय तक समावेशन पर बहुत सारी बातचीत शुरू हो गई थी। पहले इसे 'एकीकरण' कहा गया था अब यह 'समावेशन' है। मूल बात यह है कि सबसे पहले तो ये बच्चे हैं, विकलांगता तो बाद में आती है और जैसे हम अन्य बच्चों के लिए प्रावधान करते हैं, वैसे ही हम विकलांग बच्चों के लिए भी प्रावधान करते हैं। हम इनके लिए कुछ अधिक प्रयत्न करते हैं क्योंकि यह उनका अधिकार है कि उन्हें जो कुछ भी मिले वह हमारी उदारता या उनकी तरफ़दारी करने की वजह से न मिले। इसलिए धीरे-धीरे यह पूरा विचार अधिकार आधारित दृष्टिकोण बन गया, एक अधिक समावेशी दृष्टिकोण। यह विचार उजागर हुआ कि इन बच्चों का समाज में स्थान है, और आप उसे छीन नहीं सकते।

इन बच्चों की स्कूली शिक्षा किस तरह की होनी चाहिए— इसके चयन का अधिकार बच्चों या उनके परिवारों को होना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे यह दूसरे बच्चों के लिए है। यदि कोई परिवार यह चुनाव करता है कि उनके बच्चे को अन्य बच्चों के साथ किसी नियमित स्कूल में जाकर पढ़ाई करनी चाहिए तो यह स्कूल की और राज्य की ज़िम्मेदारी है कि वे इस बात को सुनिश्चित करें कि उस बच्चे को जो भी चाहिए वह उपलब्ध हो। यदि कई प्रकार की विकलांगता वाले बच्चों के माता-पिता यह महसूस करते हैं कि उनके बच्चों के लिए विशेष स्कूली शिक्षा ठीक रहेगी तो यह सुविधा उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए। यदि किसी तीसरे वर्ग को लगता है कि उनके बच्चे को घर पर ही रहने की आवश्यकता है, क्योंकि वह भौतिक रूप से स्कूली शिक्षा तक पहुँच पाने में असमर्थ है, तो उसे घर पर ही उस तरह की देखभाल उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इस प्रकार से पूरा नज़रिया ही बच्चे की आवश्यकता पर विचार करने और बच्चे को वह आवश्यकता उपलब्ध कराने की ओर स्थानान्तरित हो गया है।

जहाँ तक सम्भव हो, बच्चों को एक बड़ी समावेशी व्यवस्था का हिस्सा होना चाहिए। इसका अर्थ है अपने दिमाग़ को खुला रखना— पहली बात, बच्चों को बच्चों के रूप में देखना; दूसरी बात, भौतिक पहुँच प्रदान करना और बच्चे की सभी शारीरिक ज़रूरतों के हिसाब से मदद करना और तीसरी बात, इसे मोटे तौर पर 'पाठ्यक्रम सम्बन्धी पहुँच' कहा जाता है। पाठ्यक्रम सम्बन्धी पहुँच का मतलब स्तर को कम करना

नहीं है, बल्कि ऐसे समायोजन करना है जिन्हें करना आवश्यक है ताकि बच्चा अपनी पूरी शिक्षा प्राप्त कर सके। अगर खेल के मैदान, प्रयोगशाला या परीक्षा प्रणाली को उनके अनुरूप बनाना है, तो बनाएँ। शिक्षा का अधिकार क़ानून के तहत कोई भी स्कूल किसी भी बच्चे को 'ना' नहीं कह सकता है।

लेकिन वास्तव में माता-पिता, स्कूल और प्रणाली के लिए यह बहुत कठिन है। एक तो हमें उस तरह की दक्षता का निर्माण करना होगा जो विकलांग बच्चों के साथ काम करने के लिए आवश्यक है। 'विकलांगता' एक बहुत व्यापक शब्द है, इसमें कई मुद्दे आ जाते हैं और बच्चे के जीवन के हर चरण में उस विकलांगता के निहितार्थ बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए, स्वलीनता के निहितार्थ एक बहुत छोटे बच्चे के लिए अलग और किशोरों के लिए अलग हो सकते हैं। विकलांगताएँ अलग तरह से काम करती हैं और कई विकलांगताएँ अलग-अलग बच्चों के साथ अलग तरह से काम करती हैं। स्नायु सम्बन्धी (न्यूरोलॉजिकल) कठिनाइयाँ बहुत सारी हैं और हालाँकि इनका एक व्यापक पैटर्न है, लेकिन कई बार आपको यह देखना पड़ेगा कि वास्तव में बच्चे के साथ क्या हो रहा है, तब आप उसके प्रति सही प्रतिक्रिया दिखाने में सक्षम होंगे। आज हम जहाँ हैं, उसके हिसाब से ऐसा कर पाना नियमित स्कूल या प्रणाली के लिए कठिन है। क्या यह असम्भव है? हरगिज़ नहीं। हमें इस दिशा में काम करना है और जब तक हम एक ऐसे बिन्दु पर नहीं पहुँच जाते हैं जहाँ हमारा सिस्टम इसके लिए तैयार हो जाए, तब तक हमें बहुत सारे समायोजन करने होंगे। हो सकता है कि ये पूरी तरह से एक आदर्श समावेशन के समान न हों क्योंकि यदि आप बच्चे के दृष्टिकोण से देखें तो उस बच्चे का ऐसे स्कूल में होने का क्या उपयोग है जिसमें बच्चे को सँभालने की क्षमता नहीं है और अगले कुछ वर्षों में इसकी सम्भावना भी नहीं है।

इसे देखने का एक तरीक़ा यह है कि हम चाहते हैं कि ये बच्चे दूसरे बच्चों के साथ रहें और सीखें। लोग अच्छे हैं, देखरेख करने वाले हैं, खुले विचारों के हैं और समायोजन करने के लिए तैयार हैं। लेकिन कई बार इतना काफ़ी नहीं होता क्योंकि अगर हम बच्चे के विकास के महत्त्वपूर्ण वर्षों के दौरान हस्तक्षेप न करें तो हम बहुत कुछ खो बैठते हैं। जिसे सुधारा या रोका जा सकता था, उसे सिर्फ़ इसलिए नहीं रोका जा सका क्योंकि ऐसे लोग उपलब्ध नहीं थे जो ऐसे महत्त्वपूर्ण समय में काम करने का मतलब समझते हों जब हस्तक्षेप के द्वारा विकलांगता के प्रभाव को कम किया जा सकता है, भले ही वह विकलांगता को दूर न कर सके।

कुछ राज्यों ने एक बहुत अच्छी प्रणाली स्थापित की है जो कि खण्ड/ब्लॉक स्तर तक और कई बार संकुल/क्लस्टर स्तर तक पहुँचती है, जबकि कुछ अन्य ऐसे हैं जिन्होंने इसे किया तो है लेकिन अधिक सफल नहीं हो पाए। उन्होंने योग्य लोगों को काम पर रखा है जो बच्चों की स्क्रीनिंग करते हैं, उनके साथ व्यक्तिगत रूप से काम करते हैं क्योंकि सरकारी स्कूल प्रणाली की वास्तविकता यह है कि स्कूल छोटे हैं और व्यापक रूप से फैले हुए हैं। इसलिए प्रत्येक स्कूल के लिए एक विशेष शिक्षक को रखने की बजाय यह तरीक़ा अधिक कारगर लगता है। ब्लॉक स्तर पर 5-6 लोग (फ़िज़ियोथेरेपिस्ट, स्पीच थेरेपिस्ट, विशेष शिक्षक आदि) हैं, जो श्रवण दोष, चलन अक्षमता, तन्त्रिका सम्बन्धी कठिनाइयों वाले बच्चों के साथ काम करने के योग्य हैं (एक आदर्श स्थिति में— वास्तव में, आपको हर ब्लॉक में इतने योग्य लोग नहीं मिलते हैं)। बच्चे ऐसे किसी केन्द्र में आते हैं या ये शिक्षक उनके घरों या स्कूलों में जाते हैं। यह आदर्श स्थिति नहीं है लेकिन वास्तव में लक्ष्य की ओर बढ़ने से मेरा यही तात्पर्य है कि इस तरह से बढ़ना चाहिए जो सम्भव हो। बेंगलूरु में आप बहुत कुछ कर सकते हैं लेकिन अगर आप कर्नाटक के यादगीर या बीदर या बागलकोट के ब्लॉक में जाएँ तो ऐसी विशेषज्ञता बहुत कम मिल पाती है। यहाँ तक कि अगर आप आर्थिक रूप से अच्छे स्पीच थेरेपिस्ट, फ़िज़ियोथेरेपिस्ट और विशेष शिक्षक को काम पर रखने में सक्षम हों भी तो समस्या उपलब्धता की है। हमारे पास कुछ स्थानों में समूहबद्ध विशेषज्ञता है लेकिन प्रसार उपलब्ध नहीं है।

एक चीज़ और है जो हमने नहीं की है या पर्याप्त रूप से नहीं की है या थोड़ी बहुत की है— वह यह कि सेवापूर्व शिक्षक-शिक्षा में विकलांग बच्चों के साथ काम करने के अभ्यासों, विचारों और तरीक़ों को यथेष्ट स्थान नहीं दिया है। किसी नियमित स्कूल शिक्षक की कक्षा में विकलांगता वाले बीस बच्चे तो नहीं होंगे, केवल एक होगा। इसलिए यदि आपके पास ऐसा एक बच्चा है तो आप क्या कर सकते हैं? ऐसे कौन-से संकेत हैं जिन पर आपको ध्यान देना है, जिसकी आपको चिन्ता करनी है? ऐसे कौन-से संकेत हैं जिन पर आपको कोई ठप्पा लगाने की जल्दी में नहीं होना चाहिए? किसी बच्चे पर एकदम से ठप्पा लगाने के ख़तरे भी उतने ही बुरे हैं। इन पहलुओं को नियमित शिक्षक-शिक्षा का हिस्सा होना चाहिए, विशेष रूप से शुरुआती वर्षों में क्योंकि बाद के वर्षों में यह अकसर बहुत मुश्किल होता है। मैं प्री-स्कूल और प्रारम्भिक प्राथमिक कक्षाओं के बारे में बात कर रही हूँ यानी तीन से आठ वर्ष की आयु के बच्चों की। स्पष्ट और साफ़ नज़र आने वाली विकलांगता की स्थिति में शिक्षकों को इसे सँभालने के कुछ तरीक़ों को ज़रूर जानना चाहिए— ऐसे छोटे-छोटे सरल तरीक़े जिन्हें व्यावहारिक रूप से करना सम्भव हो, ना कि आदर्शवादी असम्भव विचार। जैसे अगर किसी बच्चे को

देखने में दिक़्क़त पेश आती हो तो उसे कक्षा में आगे बिठाने जैसा सहज सामान्य तरीक़ा। नियमित शिक्षक-प्रशिक्षण में इस तरह की बातों को जोड़ने की दिशा में हमें अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना है।

दूसरी समस्या संरचनात्मक है। भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई) विकलांग बच्चों के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण का ध्यान रखती है और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) नियमित शिक्षक-प्रशिक्षण का ध्यान रखती है। हमें इन दोनों को साथ लाना होगा। आरसीआई सामाजिक न्याय और अधिकारिता मन्त्रालय का हिस्सा नहीं हो सकती— इसे मानव संसाधन विकास मन्त्रालय का हिस्सा होना चाहिए।

हमें शायद कुछ विचारों की शुद्धता पर पूरी तरह से ध्यान केन्द्रित करने की धारणा से हटकर सोचना होगा। समावेशन के अपने विशुद्ध रूप में बहुत लम्बे समय तक और बड़े पैमाने पर बने रहने की सम्भावना नहीं है। हमें इस स्थिति तक पहुँचने में कम से कम 50 साल लगेंगे कि जब हर स्कूल विकलांग बच्चे की देखभाल और शिक्षित करने के कार्य का 'स्वागत' करेगा और उस 'योग्य' होगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम इसके लिए काम नहीं करें। हम जो कुछ भी करें, उसमें समावेशन का सन्देश सदा अपने शुद्धतम और आदर्श रूप में अन्तर्निहित होना चाहिए। लेकिन वहाँ तक पहुँचने के लिए हमें कई कार्य करने होंगे। हमें कोई विकल्प केवल इसलिए नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि हम किसी निश्चित शुद्ध विचार से चिपके रहना चाहते हैं। ऐसे कई लोग हैं जो कहेंगे कि 'सभी विशेष स्कूलों को बन्द कर दिया जाए'। ऐसा करने का मतलब है एक ऐसी प्रणाली को नष्ट करना जिसने बहुत अच्छा काम किया है और जो विकलांग बच्चों के परिवारों के मन में एक मज़बूत विकल्प के रूप में अपना स्थान बनाए हुए है। हम इन्हीं संस्थानों की वजह से यहाँ तक पहुँचे हैं। हमें इन संस्थानों के कुछ अभ्यासों को नियमित स्कूल प्रणाली में शामिल करने का प्रयास करना होगा; शिक्षक-शिक्षा के चारों ओर काम करना होगा; और, जहाँ भी विकलांग बच्चों की पहचान की जाए वहाँ अधिगम सामग्रियों/साधनों/उपकरणों के लिए बजट बढ़ाना होगा।

पाठ्यक्रम और आकलन के लचीलेपन पर ध्यान देना सबसे महत्त्वपूर्ण है। हम ऐसा नहीं करना चाहते हैं— परीक्षाएँ अलंघ्यनीय (sacrosanct) हैं और हमें उसके चारों ओर काम करने की कोशिश करनी चाहिए। यदि आपके पास अधिगम की अक्षमता वाला बच्चा है, तो हमें सफल होने में उसकी मदद करनी चाहिए। हमें वैकल्पिक शिक्षण और आकलन के रास्ते खोजने चाहिए जो किसी भी अन्य रास्ते की तरह कठोर और वैध हों। हमारी सहायता के लिए दुनिया भर के पर्याप्त शोध मौजूद हैं। हमें एक ऐसी प्रणाली बनानी होगी जो ऐसा करने का अवसर और प्रोत्साहन प्रदान करे।

किशोरावस्था के दौरान विकलांग बच्चों को कैसा महसूस होता है, इसकी भी पर्याप्त समझ हमें नहीं है। उनके शरीर, उनके भावनात्मक जीवन... स्वलीनता स्पेक्ट्रम के अतिक्रियाशील बच्चे; शारीरिक तौर पर विकलांग किन्तु बहुत तेज़ दिमाग वाले बच्चे; अधिगम की अक्षमता वाले समूह में विभिन्न स्तर रखने वाले बच्चे; बौद्धिक रूप से अक्षम बच्चे —इन सबके साथ किशोरावस्था के दौरान क्या होता है? क्या कुछ अलग होता है— उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ; उनके बदलते विचार; सौन्दर्य के बारे में उनकी प्रतिक्रिया; यौन आकर्षण; अपने शरीर में होने वाले परिवर्तन को सँभाल सकना। ये ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें हम पर्याप्त रूप से समझ नहीं पाए हैं क्योंकि हम यह मानकर चलते हैं कि विकलांग बच्चे अलग होते हैं। हम अपने विकलांग बच्चों को किशोरावस्था और युवावस्था के लिए तैयार नहीं करते हैं।

सामाजिक समावेशन की दिशा में कोई भी क़दम उठाने के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण होने वाला है। क्योंकि अगर बच्चे उन सारी चीज़ों को सँभालने में सक्षम नहीं होते हैं जिन्हें उन्हें सँभालना चाहिए तो उन्हें हमेशा संघर्ष करते रहना पड़ेगा। जो बच्चे दुनिया में कहीं भी जाने या अपने दम पर जीने में सक्षम हैं, उन्हें भी लगातार संरक्षण की आवश्यकता होगी। सभी बच्चों को देखभाल की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए एक बिन्दु के बाद लगातार उनकी रक्षा करना बच्चे के विकास के लिए नकारात्मक और हानिकारक बन जाता है। सुरक्षा के मुद्दे बहुत बड़े हैं— भावनात्मक, शारीरिक। अनुचित व्यवहार का ख़तरा हमेशा बना रहता है, उससे बचा नहीं जा सकता— कुछ बच्चों को हमेशा दूसरों की तुलना में अधिक सुरक्षा की आवश्यकता होगी। इसलिए बच्चे के चारों ओर एक सहायता तन्त्र का निर्माण बहुत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन यह मान लेना कि सभी विकलांग बच्चे ख़ुद की रक्षा करने में असमर्थ हैं, एक चरम प्रतिक्रिया है।

साथ ही बहुत जटिल अन्दाज़ में स्थितियों का जवाब देने से परिवारों को बहुत परेशानी होती है। कुछ सरल छोटे विचार जो कारगर होते हैं और जिन्हें माँ या बच्चे या दोस्त वास्तव में कर सकते हैं—अकसर हमारे ज़ेहन से निकल जाते हैं। यह बात हमारे सभी बच्चों पर लागू होती है। हमें कई चीज़ें बदलनी होंगी और कभी-कभी ये बहुत छोटी चीज़ें होती हैं। और ऐसा करने की ज़िम्मेदारी सिस्टम की है। लेकिन मुझे यह भी लगता है कि एक सिद्धान्त के रूप में यह कल्पना करना कि विकलांग बच्चे स्थिति का सामना नहीं कर सकते, उनकी गरिमा का अपमान करना है। यह तो ऐसा ही हुआ कि जैसे मैं

किसी ऐसी कक्षा में हूँ जिसमें 24 घण्टे इतालवी बोली जाती है, सारा साहित्य इतालवी में है और उनका सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्याकरण मेरे लिए पूरी तरह से अनजाना है तो मैं उस कक्षा में बिलकुल अक्षम हो जाऊँगी। हमारे विकलांग बच्चे नियमित हालातों में बिलकुल ऐसा ही महसूस करते हैं, फिर चाहे वह कक्षा हो या खेल का मैदान या बाज़ार। बाज़ार और खेल के मैदान जैसी अनौपचारिक जगहों पर किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा मध्यस्थता की जा सकती है जो उन्हें बहुत अच्छी तरह से जानता हो लेकिन कक्षा में वे अकसर अकेले पड़ जाते हैं।

इसलिए कक्षाओं को फिर से इस तरह डिज़ाइन करने में सक्षम होना जिसमें सभी को शामिल किया जा सके, एक ऐसी चुनौती है जिसके लिए हम सभी को कार्य करना होगा और कई शिक्षकों ने ऐसा किया भी है। वे ऐसा कर पाए क्योंकि उन्हें प्रशिक्षित किया गया है या इसलिए क्योंकि वे अच्छे शिक्षक हैं और जो बच्चे उनके पास आते हैं, उन्हें वे बच्चा ही मानते हैं। तकनीकी रूप से भले ही वे बड़ी-बड़ी चीज़ें नहीं कर सकते हों लेकिन अन्ततः उनके पास ऐसे बच्चे होंगे जो अपने मौजूदा वातावरण में कुछ चीज़ों को सँभालने में सक्षम होंगे। मैंने दूरदराज़ के स्थानों में ऐसा होते हुए देखा है। क्योंकि बच्चे के पास जाने के लिए कोई और जगह नहीं है, सिवाय गाँव के स्कूल के। माता-पिता दोनों पूरे दिन मेहनत-मज़दूरी करते हैं, दादा-दादी भी काम पर जाते हैं, बच्चे की देखभाल करने वाला कोई नहीं होता इसलिए बच्चा भाई-बहन के साथ स्कूल चला आता है। यह बहुत क़िस्मत की बात है कि शिक्षक उसका स्वागत करते हैं और बच्चा चीज़ों को सीखना शुरू कर देता है, उन्हें करना शुरू कर देता है। अब सम्भव है कि अगर इस बच्चे को उसके जीवन के सही चरण में सही तरह की थेरेपी, सही तरह का शैक्षिक इनपुट तथा सही तरह की अन्य सहूलियतें मिलतीं तो उसकी प्रगति बहुत बेहतर होती। लेकिन जब आप स्कूल में जाते हैं और उन परिस्थितियों में आप एक प्रसन्न बच्चे को देखते हैं जो काफ़ी कुछ कर रहा है, तो यह बहुत असाधारण बात है। इसका कारण यही है कि शिक्षक ने उस बच्चे को एक बच्चे के रूप में माना।

दूसरी ओर एक ऐसा शिक्षक है जिसने यह सब नहीं देखा है, जिसे इन बातों की कोई समझ नहीं है, जिसकी कक्षा में पचास बच्चे हैं, उसे किसी प्रकार का कोई समर्थन नहीं दिया जाता, तो उससे इन बातों की अपेक्षा करना और फिर यह कहना कि शिक्षक ध्यान नहीं देता, एकदम अनुचित है। हमें सन्तुलन खोजना होगा, हम किसी नायक पर निर्भर नहीं हो सकते। इसकी ज़िम्मेदारी एक ऐसी प्रणाली पर होनी चाहिए जो बच्चों की मदद करे, समाधान सरल और स्थायी हों और तीसरी बात, शुद्धतावादी विचारों को छोड़ें, ऐसे समायोजन और परिवर्तन करें जो किए जा सकते हैं। वो करें जो अभी सम्भव है।

कुछ संरचनात्मक और प्रणालीगत मुद्दों को हल करना होगा—शिक्षक-प्रशिक्षण में विकलांगता प्रशिक्षण को एकीकृत करना; आकलन की एक वैकल्पिक प्रणाली बनाना, पाठ्यक्रम के साथ ऐसे प्रयोग करना कि जो वास्तव में सभी बच्चों को सम्बोधित करें। मुझे लगता है कि इन बातों के लिए सिस्टम को तैयार होना होगा। जहाँ भी विकलांग बच्चे हैं, उन स्कूलों को ऐसे संसाधनों तक पहुँचने की सुविधा होनी चाहिए। हर स्कूल में विकलांग बच्चे नहीं होते। लेकिन एक बार जब आप एक विकलांग बच्चे की पहचान कर लेते हैं तो शिक्षक के पास उन संसाधनों की पहचान करने की क्षमता होनी चाहिए जो स्कूल में मौजूद नहीं हैं लेकिन कुछ स्कूलों के संकुल के संसाधन केन्द्र में मौजूद हैं। यह वह प्रणाली है जो बड़े तथा भौगोलिक रूप से फैले हुए सिस्टम में काम करती है। हमारे वर्तमान ढाँचे में हर स्कूल में ऐसे संसाधन नहीं होंगे। अगर हम आगे जाकर अपना ढाँचा बदलते हैं तो वह अलग बात है।

नया पीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 बहुत व्यापक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) में जो भी सिफ़ारिश की गई है वह 2016 के पीडब्ल्यूडी अधिनियम के अनुरूप है। अब सवाल यह है कि हम विकलांग लोगों को, जो अपने अधिकारों के लिए नहीं लड़ सकते, कैसे सशक्त बनाएँ? देश भर में कई समूह हैं और उनमें से अधिकांश अभिभावकों के समूह के रूप में शुरू हुए क्योंकि वे ही हैं जो इस स्थिति को महसूस करते हैं, उसके लिए संघर्ष करते हैं और जिन्हें सबसे अधिक लड़ना पड़ता है। इसलिए अभिभावकों के संघों ने विकलांग लोगों के पक्ष-समर्थन के पूरे आन्दोलन का नेतृत्व किया है। फिर स्वयं विकलांग लोग भी हैं, जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है, जो समुदाय के साथ काम करना चाहते हैं और जिन्होंने महसूस किया है कि उन्हें एक साथ मिलकर ज़ोरदार आवाज़ उठानी है। इसके अलावा ऐसे संगठन भी हैं जिन्होंने विकलांग बच्चों के साथ कई वर्षों तक काम किया है। पीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 स्वयं इसी का परिणाम है। यह पहला अधिनियम नहीं है लेकिन जिस तरह के बदलाव आए हैं वे इसी राष्ट्रीय स्तर के पक्ष-समर्थन का परिणाम हैं।

लेकिन छोटे स्थानों में, उन जगहों पर जहाँ इस तरह की सहायता उपलब्ध नहीं है, वहाँ माता-पिता के लिए पहली आवाज़ उठाना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस बारे में कोई भी उनसे अधिक नहीं जानता, ख़ासकर तब जब बच्चा छोटा होता है। उन्हें सवाल पूछने हैं, सेवाओं की माँग करनी है और उनमें योगदान देना है, प्रोत्साहित करना है तथा सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग करना है। कई बार तो परिवारों को पता ही

नहीं होता है कि क्या उपलब्ध है और ज़ाहिर है कि इन चीज़ों तक वित्तीय और भौतिक पहुँच सीमित है। इसलिए विचार यह है कि प्रणाली परिवार तक पहुँचे, परिवार प्रणाली तक नहीं। लेकिन वास्तव में हमारे विशाल देश में यह सम्भव नहीं है। हमें प्रणाली में उपलब्ध सभी संरचनाओं का उपयोग करना होगा जैसे शैक्षिक संरचना, ग़ैर-सरकारी संगठन और नागरिक समाज संगठन। यह ज़िम्मेदारी राज्य की है लेकिन लोगों को पंचायतों, एसएमसी और अन्य स्थानों में बातचीत शुरू करनी है और पता लगाना है कि संसाधनों तक कैसे पहुँचा जाए। यह कहीं जाने और माँगने की बात नहीं है; वरन नए विचारों के बारे में सोचने की बात है। ऐसा नहीं है कि सिस्टम के लोग मदद नहीं करना चाहते हैं या उन्हें रुचि नहीं है। यदि कोई माता-पिता किसी ज़िले के किसी ब्लॉक में एक अधिकारी से एक स्पीच थेरेपिस्ट की माँग करते हैं तो अधिकारी उसे कहाँ से लाएगा? लेकिन अगर माता-पिता उसे बताते हैं कि राज्य की राजधानी में स्पीच थेरेपिस्ट प्रशिक्षण का एक कॉलेज है और वे अपने अन्तिम वर्ष के कुछ विद्यार्थियों का ब्लॉक प्लेसमेंट करने को तैयार हैं तो इससे अधिकारी को सहायता मिलेगी। तब ऐसा हो सकता है कि जब तक वह प्रशिक्षक वहाँ है, उस दौरान वह एक या दो अभिभावकों को थेरेपी सिखा दे ताकि वे बाद में भी उसे जारी रख सकें। तो हमें समाधान और विचारों के बारे में सोचना होगा। किसी से इसकी माँग करना एक तरीक़ा है, लेकिन मुझे पता नहीं क्यों लगता है कि यह पर्याप्त नहीं है। हमें एक साथ मिलकर इसके बारे में पता लगाना होगा, माता-पिता को अगुवाई करनी होगी क्योंकि वे समझते हैं कि उनके बच्चे को क्या चाहिए।

एक आख़िरी बात जो मैं कहना चाहती हूँ, वह यह है कि विकलांग बच्चों का जो डेटा हमारे पास है, वह बहुत विश्वसनीय नहीं है। हमें इसकी बेहतर समझ होनी चाहिए ताकि हम यह पता लगा सकें कि जो विकलांग बच्चे स्कूल में हैं, उनके साथ क्या हो रहा है, कौन स्कूल जा रहा है और कौन नहीं।



इन्दु प्रसाद वर्तमान में स्कूल ऑफ़ एजुकेशन और स्कूल ऑफ़ कंटीन्यूइंग एजुकेशन एण्ड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में निदेशक के रूप में कार्यरत हैं। वे 2005 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन का हिस्सा हैं। उनके काम के मुख्य क्षेत्र शिक्षक-शिक्षा (नीति, पाठ्यक्रम, अभ्यास) और केन्द्र और राज्य सरकारों के साथ शिक्षा नीति पर काम करना है। इससे पहले उन्होंने लगभग पन्द्रह साल तक विकलांग बच्चों के साथ काम किया है। उनसे indu@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल